मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में आस्था और विचार दर्शन

डॉ. मोहम्मद फ़ीरोज़ खान

विचार मस्तिष्क से सम्बद्ध है। जीवन को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों, घटनाओं आदि के आधार पर विचार जन्म लेते हैं। रचनाकार सामाजिक गतिविधियों के प्रति सदैव सचेत रहता है। वह सामाजिक घटनाओं से पूरी तरह प्रभावित होता है और अपने विचारों को सर्जनात्मक रूप देकर समाज को प्रभावित करता है। विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों वाले देश भारत में विभिन्नता के कारण पराया धर्म के नाम पर समस्यायें जन्म लेती रही हैं। सबसे बड़ी जाति के रूप में भारत में हिन्दू और मुस्लिम दो धर्म हैं जिनके बीच मान्यताओं के विरोधाभास के कारण वर्षों से संघर्ष होता आ रहा है। देश का विभाजन इसी का परिणाम है। इन स्थितियों में भारतीय मुस्लिम उपन्यासकारों के मस्तिष्क में जन्में विचार उनके उपन्यासों में पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत हुए हैं।

धर्म वैश्विक धरातल पर मानव की सबसे बड़ी कमज़ोरी के रूप में दिखाई पड़ता है विशेषकर भारतवासी धर्म के नाम पर अत्यधिक संवेदनशील है। इसी का लाभ उठाकर ब्रिटिश साम्राज्य ने देश को विभाजित कर दिया और फूट डालो और राज्य करो नीति का विष ऐसा फैलाया कि उसका प्रभाव आज तक नहीं मिट सका। वर्तमान में राजनेता धर्म एवं जाति के नाम पर सत्ता हथियाने के हथकण्डे अपनाने में प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। जबकि किसी भी धर्म में संदेश मानवता के विपरीत नहीं है वह सदैव एकता एवं बंधुत्व का संदेश देता है। डॉ. राधाकृष्ण भी धर्म को मानव समाज को अनुशासित रखने वाली शक्ति के रूप में माना है जो आत्मा से सम्बद्ध होने के कारण मानव जाति को द्वेष भाव से बचाकर मैत्रीपूर्ण व्यवहार का सन्देश देता है। धर्म एक ऐसी संस्था है जो मानव जीवन को आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करता है तथा समाज को एक स्वरूप प्रदान करता है।

धर्म का अर्थ संकीर्ण सोच कदापि नहीं है। इस्लाम के नाम पर विचारों को मनुष्य को बाँटने का प्रयास किये जाने पर प्रतिक्रियात्मक विचार राही मासूम रज़ा के 'आधा गाँव' उपन्यास में व्यक्त किया गया है। उपन्यास की पात्रा आसिया की दृष्टि मानववादी धर्म का समर्थन करती है। वह कहती है कि- ''खाली इस्लाम से काम न चलत... दुनिया कौनो चीज है कि ना।''[1] मुसलमानों में भी धर्म के प्रति अटूट आस्था है उन्हें इस्लाम की शक्ति पर पूरा विश्वास है। इस्लाम की सुरक्षा, पैग़म्बर के नवासे ने अपने पूरे कुनबे का बलिदान देकर शत्रु की यातना सहकर अग्नि परीक्षा से गुजरते हुए की है। इसलिये इस्लाम की दृढ़ता पर मुसलमानों को बड़ा विश्वास है। नासिरा शर्मा ने 'सात नदियां एक समुन्दर' उपन्यास में लिखा है कि ''इतना ग़म यदि किसी और क़ौम पर पड़ता तो जाने कब की पागल हो जाती।''[2] मुसलमानों में धर्म से जुड़ी गहरी आस्था में कहीं-कहीं गहरा अन्धा विश्वास भी दिखाई पड़ता है। 'सात आसमान' उपन्यास में असगर वजाहत धर्म से जुड़ी अंधी आस्थावादी विचारधारा को व्यक्त किया है- ''यही कुआँ खोदो, इतना पानी निकलेगा कि कभी ख़त्म न होगा। इतना ज्यादा पानी निकलेगा कि जो एक बार पी लेगा यहीं का हो जायेगा। ...भइया इस कुएं का पानी पीने वाला कहीं दूसरी जगह बीमार पड़ जाये और लौटकर यहां आए, इस कुएं का पानी पीये तो अच्छा हो जाता है।''[3] विशेषकर

अशिक्षित या कम पढ़े-लिखे मुसलमानों में धर्म से जुड़ी किंवदन्तियां प्रचलित हैं। उस पर उनका गहरा विश्वास दिखाई पड़ता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह का आरम्भिक जीवन वाराणसी के उस वातावरण से प्रभावित हुआ था जहाँ श्रमिक वर्ग अपनी आस्था और विश्वास के साथ जीवनयापन कर रहे थे। जिन्हें बिस्मिल्लाह ने बहुत निकट से देखा था। उन्होंने 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में उसी श्रमिक समाज का चित्र प्रस्तुत किया है तथा धर्म के प्रति आस्था और विश्वास सम्बन्धी विचार को व्यक्त किया हैं। यह विचार केवल उपन्यास में व्यक्त श्रमिक वर्ग का नहीं है अपितु यह विचार बहुत बड़ी संख्या वाले मुस्लिम समाज का है- ''खजूर अरब का मेवा है। इसे हमारे रसूले अरबी ने खाया है, इसलिए यह सुन्नत है। रोज़ेदार ने अगर खजूर से इफ़्तार किया तो अल्लाहताला बहुत खुश होंगे, क्योंकि यह उनके हबीब (ह0मु0) की प्रिय गिज़ा रही है।''[4] यह मान्यता अच्छे शिक्षित मुस्लिम परिवारों में भी मिलती है और रमज़ान के महीने में खजूर से इफ़्तार करने की परम्परा जनसामान्य में प्रचलित हैं रमजान का महीना मुसलमानों के यहाँ सर्वाधिक पवित्र महीना माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि इस माह में नेकी बदी का हिसाब होता है। इबादत द्वारा गुनाहों की माफी करवाई जाती है। रोज़ा प्रत्येक मुसलमान पर वाजिब है। एक रोज़ा छूटने का गुनाह हज़ार रोज़े के बराबर है। इस मान्यता के प्रति गहरा विश्वास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में दिखाया गया है कि ''उन्तीस को रमजान का चाँद नहीं दिखाई दिया पर बनारस के अधिकांश बुनकरों ने विशेषकर स्त्रियों ने दूसरे दिन से ही रोज़ा रखना शुरू कर दिया है। हो सकता है कि कहीं दिखाई भी पड़ गया हो एक रोज़ा अगर छूट गया तो हज़ार रोज़े टूटने का गुनाह होगा।''[5]

मुस्लिम समाज में पर्दा प्रथा का प्रचलन है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पर्दा प्रथा अपवाद मात्र रह गई है। परन्तु अब भी परम्परावादी परिवारों में ऐसी स्त्रियाँ हैं जो परदे पर पूरा अमल करती हैं। राही मासूम रज़ा ने 'आधा गाँव' उपन्यास में खानदानी औरत की दृष्टि में परदे के महत्त्व का उल्लेख किया है। उपन्यास की पात्रा सल्लो मृत्यु के निकट है वह वसीयत करती है कि ''मेरा जनाजा रात के पर्दे में निकालना।''[6]

भारतीय समाज में धर्म के प्रति गहरा विश्वास, अंधी आस्था और उच्च शिक्षा के अभाव में रूढ़ियों का गहरा वर्चस्व है। यहाँ के लोग झाड़-फूंक आसेब आदि पर गहरा विश्वास रखते हैं। शानी ने 'काला जल' उपन्यास में ऐसे ही अंधविश्वासजन्य विचार को व्यक्त किया हैं ''अपना-अपना विश्वास है, चाहे जिस पर जम जाये। ...आकर्षण के लिये तो इतना काफी है कि बारह-तेरह साल का हिन्दू लड़का सवारी उठाता है। उसके आगे जो हो। जिससे दुरूद-फातिहा या कुरान से दूर का सम्बन्ध न हो, वही लड़का 'हाल' आने पर अरबी की आयतें साफ-साफ पढ़े क्या यह ताज्जुब की बात नहीं है।''[7]

मुस्लिम समाज में प्रचलित कथा है कि मकड़ी ने रसूले अकरम की जान बचायी थी तथा गिरगिट ने शत्रु को इशारा किया था। अतः गिरगिट को मारने का सवाब है। उपन्यास में व्यक्त विचार उल्लेखनीय है- ''पैग़म्बर बिचारे दुश्मनों से भागकर एक जंगल में छिपे थे चूँकि उनके प्रवेश से झाड़ियां दब बैठ गयी थी और उनके देखे जाने का अन्देशा था सो उन्होंने मकड़ी से इल्तजा की कि उनके चारों तरफ जाले पूर कर उन्हें छिपा दे। मकड़ी दोस्त और रहमदिल होती है, उसने वैसा ही किया। जब दुश्मन आये तो भटक गये थे। उन्हें बिल्कुल पता नहीं लग पाता लेकिन पास ही साला एक

गिरगिट था जिसने सिर हिला-हिलाकर उस ओर इशारा कर दिया और पैगम्बर गिरफ्तार हो गए। तब से गिरगिट सालों को मारो तो सवाब पहुंचता है।''[8]

मुस्लिम समाज की आस्थावादी, परम्परावादी एवं रूढ़िवादी मानसिकता की ओर अब्दुल बिस्मिल्लाह, राही मासूम रज़ा, नासिरा शर्मा, असगर वजाहत और शानी का ध्यान गया है वही उनकी जागरूक चेतना ने समय एवं परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ टूटती आस्था बदलते विश्वास और विघटित होते परम्परावादी मूल्यों को भी देखा है। उन्होंने ईश्वर की सत्ता, उसकी शक्तियों पर सन्देह करने वाले मुसलमानों के भी विचारों को अभिव्यक्ति दी है। 'सात नदियां एक समुन्दर' उपन्यास में नासिरा शर्मा ने ईश्वर की सत्ता पर शक करने वाले चरित्र को प्रस्तुत किया है। जो परिस्थितियों से विवश होकर कहता है कि ''मुझे तो अब इसी बात पर शक है कि ख़ुदा है भी या नहीं अगर है तो कहाँ है? या फिर वह भी इन्सानियत को छोड़कर सियासी दांव-पेंच लड़ाने लगा है उसे भी पावर में रहना है, अपनी सत्ता बनाये रखना है।''[9] इसी उपन्यास में ईश्वर के शक्तिहीन हो जाने का उल्लेख किया गया है। उपन्यास का पात्र सुलेमान कहता है कि ''खुदा बूढ़ा हो रहा, उसके बस की बात नहीं इतने बड़े कारोबार को संभालना, मेरे ख्याल से उसे अब अपना कोई उत्तराधिकारी घोषित कर देना चाहिए।''[10] कुछ लोगों का विश्वास धर्म और आस्था के नाम पर फैली कुरीतियों के कारण धर्म पर से उठ गया है। मंजूर एहतेशाम ने 'दास्तान-ए-लापता' में ऐसे ही विचार को अभिव्यक्ति दी है। उपन्यास का पात्र ज़मीर अहमद खान कहता है कि ''मैंने धर्म और मज़हब के नाम पर जितना कुछ देखा है, उसमें किसी प्रकार के ईमान आस्था की गुंजाइश नहीं है। सब कपट और धोखाधड़ी लगता है।''[11] इस प्रकार ईश्वर के प्रति अनास्थावादी सोच के विकास के कारण कुछ हद तक समाज में विकृतियां भी आयी हैं। आज मनुष्य स्वयं को सर्वाधिक शक्तिशाली मानकर अनियन्त्रित व्यवहार करने में भी संकोच नहीं कर रहा है।

ईश्वरीय आस्था को रूढ़िवादी अंधविश्वासी सोच से बाहर निकाल पर उस परमसत्ता की असीम शक्ति पर पवित्र भावना से विश्वास रखने वाली सोच भी उपन्यासों में दिखाई पड़ती है। जहाँ रचनाकार की चेतना ने धर्म को व्यापकता से देखने का प्रयास किया है। 'आधा गाँव' उपन्यास का अशिक्षित पात्र कहता है कि - ''हम तो अनपढ़ गंवार है बाकी हमरे ख्याल में निमाज़ के खातिर पाकिस्तान-आकिस्तान की तनिको जरूरत ना है। निमाज़ की ख़ातिर खाली ईमान की जरूरत है। खुदाबन्द ताला ने साफ-साफ फरमा दिहिस है कि ऐ मेरे पैगम्बर कह दे ई लोग से कि हम ईमान वालन के साथ है।''[12]

आज का मनुष्य आवश्यकता से अधिक सांसारिकता में लिप्त होकर संसार को ही सत्य मान बैठा है, परन्तु ऐसे लोग भी है जो ईश्वर को ही सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न मानते हैं। वही दुनिया को चलाने वाला ईश्वर के अतिरिक्त किसी से नहीं डरना चाहिए। बदीउज़्ज़मा ने ईश्वर के अतिरिक्त किसी से भयभीत न होने की बात अपने उपन्यास 'छाको की वापसी' में व्यक्त की है। जिसका पात्र दृढ़ विश्वास के साथ कहता है कि ''कहीं भागकर जाने की जरूरत नहीं है। यहीं रहो। पैदा करने वाला और मारने वाला तो खुदा है। उसी के हुक्म से सब जीते मरते हैं। खुदा जो चाहेगा वही होगा। खुदा से डरो। इन्सानों से क्यों डरते हो।''[13]

इस प्रकार नासिरा शर्मा, मन्जूर एहतेशाम, राही मासूम रज़ा, असगर वज़ाहत, बदीउज़्ज़मा, अब्दुल बिस्मिल्लाह आदि सभी के उपन्यासों में धार्मिक आस्थावादी दृष्टि समाज में व्याप्त आस्था, विश्वास, रूढ़ियों किंवदन्तियों आदि का उल्लेख किया गया है। आस्था के प्रति विघटित होते मूल्यों की ओर भी इनका ध्यान गया है साथ ही इन्होंने आस्थावादी व्यापक दृष्टिकोण को भी उपन्यास के पात्रों द्वारा स्पष्ट किया है। कुछ बुद्धिजीवी वर्ग ने भोली-भाली जनता का धर्म के प्रति अटूट एवं समर्पित विश्वास देखकर उसका पूरा लाभ उठाने का प्रयास किया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आजादी के पचास वर्ष बाद भी हम ऐसी मानसिकता वाले लोगों का उल्लेख किया जा सकता है। धर्म के नाम पर भोली जनता में आक्रोश एवं विद्रोह पैदा कराने वाले राजनीतिक दलों का उद्देश्य मात्र अपना उल्लू साधना होता है। भारत विभाजन ऐसी ही स्वार्थ युक्त संकीर्ण मानसिकता का परिणाम है। सच कहा जाय तो भोली जनता चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, इतनी बड़ी घटना के पीछे छुपी रहस्यमयी स्वार्थपरक मानसिकता को देखकर हैरान थी जिसका खामियाजा आज तक उसी सामान्य जनता को ही भोगना पड़ रहा है। आज अपने ही देश में मुसलमानों को जवाबदेह होना पड़ रहा है। स्वतन्त्रता के पचास वर्ष से अधिक हो जाने के बाद भी मुस्लिम समाज हिन्दूवादी शंकालू दृष्टि से बाहर नहीं आ सका है।

राही मासूम रज़ा ने न केवल भारत का विभाजन देखा था बल्कि उसके पश्चात् भारतीय मुसलमानों को लेकर उठाये जाने वाले सवालों को और लोगों की प्रतिक्रिया को भी निकट से देखा था। 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि ''इसी का नाम हिन्दू शाइवनिज्म है। क्यों रहोगे? यूँ पूछ रहे हो जैसे मुल्क तुम्हारे बाप का है। ...अगर मैं मुसलमान हूँ तो इससे यह कहाँ साबित होता है कि मैं पाकिस्तानी हूँ और यह कि मैं हिन्दुस्तानी बनकर इस मुल्क में रहने को तैयार नहीं हूँ।''[14]

राजनीतिज्ञों द्वारा धर्म के नाम पर चली गयी चाल में उन्हें सफलता भी मिली। भारतीय मुसलमान अपने अलग सुरक्षित स्वतंत्र अस्तित्व के सपने बुनने लगा। विभाजन के पश्चात् असुरक्षा का बादल मंडराता देखकर मुसलमानों में पाकिस्तान से जुड़ी आशायें पैदा हो गयी थी। इस प्रकार की मानसिकता को भी राही मासूम रज़ा ने 'आधा गाँव' उपन्यास में पात्र की विचाराभिव्यक्ति द्वारा चित्रित किया है ''यह तो आप लोगों को मालूम ही होगा कि आजकल पूरे मुल्क में मुसलमानों की जिन्दगी और मौत की लड़ाई छिड़ी है। ... हिन्दुस्तानी मुसलमानों को एक ऐसी जगह की जरूरत है जहाँ वह इज़्ज़त से रह सके।''[15] 'छाको की वापसी' उपन्यास में बदीउज़्ज़मा ने भी पाकिस्तान के विषय में आशापूर्ण सोच रखने वाले मुसलमानों की मानसिकता का विचारात्मक पक्ष प्रस्तुत किया है ''सच्चे मुसलमानों के लिए वह एक जीती जागती हकीकत है। वह उनके ख्वाबों की हौसलों की ज़मीन है। वहाँ वह हिन्दुओं के जुल्म से हमेशा-हमेशा के लिए आज़ाद हो सकेंगे।''[16]

परिस्थितियाँ लोगों पर अपना अलग-अलग प्रभाव छोड़ती है। जहाँ कुछ लोग पाकिस्तान बनने से प्रसन्न थे, उन्होंने ढ़ेर सारे सपने आँखों में सजो लिये थे। वही बहुत सारे लोग अपने स्वजनों से बिछड़ जाने के कारण दुःखी थे। अपनी जमीन से जुड़ी यादें उन्हें देश से अलग नहीं होने दे रही थी। राही मासूम रज़ा ने 'आधा गाँव' उपन्यास में गंगौली के मुसलमानों की अपने गाँव और पूर्वजों की जमीन से जुड़ी रागात्मिकता का उल्लेख किया है ''ए भाई बाप दादा की क़बर हियां है। चैक इमामबाड़ा हियां है, खेती-बाड़ी हियां है, हम कोनो बुरबक हैं कि तोरे पाकिस्तान जिन्दाबाद में फंस

जायें।''[17] भारतीय मुसलमानों की स्थिति को लेकर उत्पन्न आशंकायें और विभाजन के पश्चात् उनके अस्तित्व की शून्यता की ओर मंजूर एहतेशाम ने दास्तान-ए-लापता में संकेत किया है। वह लिखते हैं कि ''यूँ दिल छोटा करने की ज़रूरत नहीं अभी उनकी अच्छी खासी संख्या देश में मौजूद है। बस हुआ यह है कि वह आज की ज़िन्दगी के लिये अप्रासंगिक हो गए हैं।''[18]

इस्लाम धर्म वैश्विक धरातल पर मानवता का सन्देश देता है। वह भेदभाव को कोई स्थान नहीं देता। विशेषकर मुस्लिम समाज में जातिगत भेदभाव का उल्लेख उसकी पवित्र पुस्तक में कहीं नहीं है। रसूले खुदा का हवाला देते हुए 'आधा गाँव' उपन्यास में इस सत्य को उद्घाटित किया गया है- ''मुसलमान-मुसलमान भाई-भाई होता है इस्लाम ऊँच-नीच नहीं मानता। क्या आंह़जरत (रसूल) ने सलमान फ़ारसी को अपने अहले बैत में नहीं गिनाया था।''[19] 'सात नदियां एक समुन्दर' उपन्यास में नासिरा शर्मा ने भी इसी प्रकार के विचार को व्यक्त करते हुए इस्लाम में व्यक्त एकत्त्व का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि ''खुदा, कुरान यह सब मजहब नहीं संस्कृति है। जो हमें हमारे बुज़ुर्गों से मिली है। हमारे रीति-रिवाज हमारी मर्यादायें इन पर निर्भर है। इससे आदमी क्यों कर अलग हो सकता है।''[20]

धर्म के नाम पर मानसिकता को विभाजित करने वाला मनुष्य इस सत्य को भूल गया कि लड़ना बँटना मनुष्य की प्रवृत्ति है वह किसी-न-किसी रूप में आपस में लड़ता रहता है। 'छाको की वापसी' उपन्यास में इस सत्य को उद्घाटित करते हुए बदीउज़्जमा ने लिखा है कि ''तुम्हें तारीख का कुछ पता नहीं है। हिन्दुस्तान की तारीख में हिन्दुओं और मुसलमानों ने एक दूसरे का खून बहाया है। उससे कहीं ज्यादा खून तो, मुसलमानों की तारीख पर एक सरसरी निगाह डाल लो तो मालूम होगा कि इस्लाम की तारीख आपसी खानाजंगी और खून-खराबे की कभी न ख़त्म होने वाली दास्तान है।''[21] 'सूखा बरगद' उपन्यास में धर्म जाति अथवा किसी अन्य विषयों को आधार बनाकर लड़ने की मानवीय प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर यह विश्वास भी दिखाया गया है कि मानवता कहीं-न-कहीं जीवित है वह विजयिनी अवश्य होगी। आलोच्य उपन्यास में मंजूर एहतेशाम ने लिखा है कि ''यह आपसी नफ़रत का खेल ज्यादा दिनों तक चलने वाला नहीं है। तहजीब एक अलग चीज है, लेकिन इस मज़हब नामी मिट्टी में अब नये पौधे पकड़ने की ताकत नहीं रही। ...मैं सोचता हूँ कि अगर मैंने ऐसा महसूस किया है तो कम से कम खुद तो इस तरह जियूँ या कम से कम इन ख़्यालों को अपने करीबी लोगों के सामने रखूँ।''[22] उपन्यासकार का मानना है कि अपनी सोच और चिन्तन के अनुरूप ही आचार-व्यवहार मनुष्य को करना चाहिए और जहाँ तक मनुष्य के परस्पर संघर्ष की बात है। यह मनुष्य की नियति है, रचनाकार का यह विश्वास बहुत बड़ी शक्ति है कि इस मतभेद, संघर्ष, घृणा आदि का अन्त अवश्य होगा । मनुष्य की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति उसकी घृणा, दया, ममता, प्रेम, वासना, तर्क, संघर्ष आदि का उल्लेख अनेक दृष्टिकोणों से प्रभावित होते हुए उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में अत्यन्त सजगता से किया है, 'कोरजा' उपन्यास में मेहरून्निसा परवेज ने मनुष्य की अनन्त सजगता से किया है। उपर्युक्त उपन्यास में मेहरून्निसा परवेज़ ने मनुष्य की अनन्त इच्छा की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि ''आदमी की यह प्यास कभी खत्म नहीं होती।''[23] मंजूर एहतेशाम ने 'दास्तान-ए-लापता' उपन्यास में मनुष्य की सत्य से पलायन करने वाली प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है। प्रायः मनुष्य अपने तर्कपूर्ण वाग्जाल से सत्य को ढक लेने का प्रयास करता है। इसी सत्य को उद्घाटित करते हुए मंजूर एहतेशाम ने लिखा है कि ''तुम मुझसे क्या खुद

अपने आप से सच नहीं बोल पाते और ऊपर से इस झूठ पर पर्दा डालने के लिए मोटी-मोटी आलीमाना-फ़ाजिलाना बातें करते हो। जीने के लिये सिर्फ खुराफाती ज़ेहन ही नहीं जीवट चाहिए होता है। ...इस जिस्म की हक़ीकत क्या अगर इसे बरतने का शऊर नहीं। ...दुनिया जिसके भी चलाये चल रही है। उसमें कुछ दमखम है। तुम्हारी सोच जैसा कोई लोंदा हरगिज नहीं है।''[24]

जीवन में मिलने वाली सफलता यश, धन, मनुष्य को अहंकारी बना देता है। इतना ही नहीं इसका ताप इतना प्रखर होता है कि मनुष्य में से मानवता की नमीं नष्ट होने लगती है। उसकी संवेदनात्मक आर्द्रता शुष्क हो जाती है। वह स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित हो जाता है। मेहरून्निसा परवेज को मनुष्य के स्वभाव के इस सत्य का आभास है। अतः वह मानवता संवेदनशीलता और अपनत्व का मोल देखकर सफलता कदापि नहीं चाहती। इसी सत्य को उन्होंने 'कोरजा' उपन्यास में कल्पित पात्र के माध्यम से व्यक्त किया है। जो कहता है कि- ''यदि तरक़्क़ी के नाम पर दुःख पीड़ा और ईर्ष्या ही मिले तो मैं कभी नहीं चाहूँगा कि मेरा बस्तर तरक्की करे। जैसा है वैसा ही रहने दो। थोड़े से मुट्ठी भर सुखों पर खुश हो लेने वाले लोगों को क्यों दिवालिया बनाना चाहती हो? क्यों उन्हें बेईमानी स्वार्थ दिवालियेपन और ख़ुदग़र्जी के नरक में झोंकना चाहती हो। जैसे हैं, वैसे ही भले हैं वे लोग।''[25] नासिरा शर्मा के यहाँ भी मानवता के विरूद्ध किसी भी प्रकार की व्यवस्था को लेकर पूर्णतः अस्वीकृति दिखाई पड़ती है। वह 'सात नदियां एक समुन्दर' उपन्यास में लिखती हैं कि- ''व्यवस्था इन्सानियत की दुश्मन हो उसका मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।''[26]

मानव सभ्यता का पूरा इतिहास संघर्षों का इतिहास है। मनुष्य ने केवल समाज, व्यवस्था और परिस्थितियों के मध्य संघर्षरत है अपितु उसका एक संघर्ष अपने आप से भी चलता रहता है जिससे वह टूटता-घुटता रहता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस संघर्ष की ओर संकेत करते हुए समरशेष उपन्यास में लिखा है कि- ''संघर्ष केवल वही नहीं होता जो चन्द ख़ास और चन्द आम लोगों के बीच होता है। संघर्ष किसी आदमी का जीवित रहना भी है। जब वह खुद से ही लड़ता है और ख़ुद से निपटता है खुद से हारता है। खुद से ही जीवित है। इस तरह आदमी एक इतिहास है।''[27]

जीवन में मिलने वाली असफ़लतायें मनुष्य को निराश कर देती है। ऐसे में उसे संवेदना, प्रेम एवं सहयोग की आवश्यकता होती है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में मन्जूर एहतेशाम ने परीक्षा परिणाम में असफल हुए पुत्र को पिता द्वारा दी जाने वाली सांत्वना का उल्लेख किया है- ''अगर यूँ हार गये तो कैसे काम चलेगा। अच्छे-अच्छे विद्यार्थियों के साथ इस तरह इत्तेफ़ाक़ हो जाते हैं। कभी-कभी सब कुछ जानते हुए भी लोगों के पर्चे बिगड़ जाते हैं। नहीं दे पाता साथ भई, दिमाग ही तो है। ...जब गौर करोगे तब खुद ही अपने किये में कमजोरियां नजर आएगी। दूसरों को इल्जाम देने के बजाय अपनी कमजोरियों को दूर करो और फिर देखो अगले साल।''[28] प्रायः मनुष्य अपनी असफलता के लिये परिस्थितियों को या अन्य चीज़ों को दोषी ठहराता है। उपन्यासकार मंजूर एहतेशाम ने उपरोक्त कथन में इस मानवीय प्रवृत्ति को भी ध्यान में रखा है।

मनुष्य की विभाजित होने की मानसिकता, आशा, निराशा, संघर्ष, द्वन्द्व, असंतोष तथा परिस्थितियों के साथ उसमें आने वाले परिवर्तन आदि मानवीय प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए नासिरा शर्मा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मेहरून्निसा परवेज़, बदीउज़्ज़मा, राही मासूम रज़ा, असगर वज़ाहत आदि उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में पात्रों के

माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। अधिकांशतः नारी त्याग और समर्पण की साक्षात् मूर्ति है। वह समस्त यातनाओं को सहते हुए भी अपने प्रिय के प्रति समर्पित भाव रखती है। नासिरा शर्मा ने नारी प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए अपने नारी हृदय को प्रभावित करने वाले विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की है- ''इन औरतों की बातें समझ नहीं आती कि जुल्म सहेगी मगर ज़ालिम को ज़ालिम नहीं कहेंगी, जो मूर्ति इनके मन में किसी की बन जाती है वह ज़िन्दगी भर बनी रहती है।''[29]

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए उनके बीच के मित्रतापूर्ण व्यवहार और नारी की आत्मगत् अवधारणा की ओर उपन्यासकारों का ध्यान गया है। विशेषकर नारी उपन्यास लेखिकाओं ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर आधारित अपनी अनुभूति को अत्यन्त स्वाभाविकतापूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान की है। अधिकांशतः नारी की आत्मा पवित्र होती है वह आत्मा से सम्बन्ध को जोड़ती है शरीर आधार मात्र होता है। शरीर संसार से जुड़ा है अतः वह सांसारिक मलीनता से दूषित हो जाता है परन्तु आत्मा को स्पर्श कर अपवित्र कर पाना कठिन है। नासिरा शर्मा ने 'सात नदियां एक समुन्दर' उपन्यास में आत्मा से जुड़े भाव को उद्घाटित करते हुए लिखा है कि ''मेरी आत्मा को तुम दाग़दार नहीं कर पाये, यह शरीर तो पहले से तुम लोगों की दी गई यातनाओं की सनद बना रहा है, नश्वर है मगर आत्मा नहीं, आत्मा का स्पर्श तुम कर पाये ऐसा भ्रम केवल पाल सकते हो।''[30]

'कोरजा' उपन्यास में व्यक्त स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को अत्यन्त मर्मस्पर्शी ढंग से व्यक्त किया गया है। मेहरून्निसा परवेज़ ने इस सम्बन्ध को मंजूर एहतेशाम और नासिरा शर्मा से अलग दृष्टि रखते हुए अभिव्यक्ति प्रदान की है। मेहरून्निसा परवेज की दृष्टि में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को शरीर की सीमा से ऊपर उठाकर देखा है, जो अटूट है, और आत्मा के अमरत्व से जुड़ा हुआ है- ''दोस्ती किसी मोड़ पर आकर टूट भी सकती है, पर दोस्ती से बढ़कर होती है एक दूसरे को समझने की बात। तमाम नाराज़गियों के बावजूद अखण्डित जुड़े रहने की बात। ...खोने का अन्देशा ही नहीं उठता। हम भावुकता की उम्र पार कर चुके हैं। जहाँ पहले हम तड़क सकते थे। छूट सकते हैं, सोचना भी बेवकूफी होगी।''[31]

आत्मा की पवित्रता और पुरुष द्वारा किया जाने वाला शोषण, स्त्री का पुरुष मित्र को, पुरुष के रूप में समझने का प्रयास और ऐसा सम्बन्ध जो टूटने छूटने की सीमा से ऊपर है, अटूट है। स्त्री-पुरुष सम्बन्ध पर आधारित तीन मान्यतायें नासिरा शर्मा, मन्जूर एहतेशाम और मेहरून्निसा परवेज के उपन्यासों में भिन्न-भिन्न ढंग से उभरकर सामने आयी है। तीनों का दृष्टिकोण मौलिक है, कहीं यथार्थवादी दृष्टि है, तो कहीं व्यक्तिगत आदर्शवादी सोच शामिल है।

धर्म के नाम पर जन्मी विसंगतियों, राजनैतिक, सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों को मुस्लिम उपन्यासकारों ने पात्रों के माध्यम से अत्यन्त सजीवता से प्रस्तुत किया है। इन पात्रों के माध्यम से समाज में चल रही विचारधारा का स्वरूप अत्यन्त यथार्थपरक ढंग से उभरकर सामने आता है। इससे यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि रचनाकार उसका चिन्तन एवं विचार कितनी गहराई से समाज से जुड़ा है। समाज के साधारण से साधारण व्यक्ति का प्रतिनिधित्व रचनाकार अपने दिव्य चिन्तन द्वारा जन्में यथार्थपरक विचारों से करता है।

सन्दर्भ-

1. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 114
2. नासिरा शर्मा, सात नदियाँ एक समुन्दर, अभिव्यंजना प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984, पृ. 243
3. असगर वज़ाहत, सात आसमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 92
4. अब्दुल बिस्मिल्लाह, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 67
5. वही, पृ. 66
6. आधा गाँव, पृ. 294
7. शानी, काला जल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 213
8. वही, पृ. 139
9. सात नदियाँ एक समुन्दर, पृ. 203
10. वही, पृ. 203
11. मंजूर एहतेशाम, दास्तान-ए-लापता, पृ. 139
12. आधा गाँव, पृ. 247
13. बदीउज़्ज़मा, छाको की वापसी, पृ. 18
14. राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 64-101
15. आधा गाँव, पृ. 66
16. छाको की वापसी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 112
17. आधा गाँव, पृ. 87
18. दास्तान-ए-लापता, पृ. 185
19. आधा गाँव, पृ. 37
20. सात नदियाँ एक समुन्दर, पृ. 205
21. छाको की वापसी, पृ. 78
22. मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 71
23. मेहरून्निसा परवेज़, कोरजा, पृ. 108
24. दास्तान-ए-लापता, पृ. 139-40
25. कोरजा, पृ. 108
26. सात नदियाँ एक समुन्दर, पृ. 272
27. अब्दुल बिस्मिल्लाह, समरशेष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 66
28. सूखा बरगद, पृ. 112
29. सात नदियाँ एक समुन्दर, पृ. 203
30. वही, पृ0 265
31. कोरजा, पृ. 87

वितस्ता २०२१